हिंदी साहित्य के मनोवैज्ञानिक उपन्यास : एक अध्ययन

हिमांशु नागदा*
डॉ विजयलक्ष्मी पोद्दार**

सारांश -

हिन्दी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास प्रेमचन्द युग एवं प्रेमचन्दोत्तर युग की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। जहाँ प्रेमचन्द ने निर्मला, गबन और गोदान में सामाजिक यथार्थ के साथ पात्रों की मानसिकता को उभारा, वहीं जैनेन्द्र ने परख, त्यागपत्र आदि में व्यक्ति के अंतर्मन की हलचलों को केन्द्र में लाकर मनोवैज्ञानिक उपन्यास को एक विशिष्ट दिशा दी। हिंदी के मनोवैज्ञानिक साहित्यकारों में फ्रायड, युंग तथा एडलर जैसे विचारकों के प्रभाव तथा मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं ने इस प्रवृत्ति को और सुदृढ़ किया। इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, श्रीकान्त वर्मा, गिरिराज किशोर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश और निर्मल वर्मा इत्यादि जैसे उपन्यासकारों ने अपने साहित्य में कुण्ठा, तनाव, आत्महीनता और अवचेतन की जटिलताओं को उकेरकर इस परम्परा को व्यापक आयाम प्रदान किए। इसी धारा में महिला उपन्यासकारों जैसे कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल आदि ने नारी मनोविज्ञान को नए सन्दर्भ प्रदान किए। इक्कीसवीं सदी में मनीषा कुलश्रेष्ठ के स्वप्नपाश ने इस मनोवैज्ञानिक परम्परा को समकालीन संवेदना के साथ आगे बढ़ाया।

बीज शब्द : मनोविज्ञान, उपन्यास, प्रेमचन्द, निर्मला, गबन, गोदान, सामाजिक यथार्थ, हिंदी इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, श्रीकान्त वर्मा, गिरिराज किशोर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश।

प्रत्येक रचनाकार अपनी रचनाओं में अपने आंतरिक अनुभवों और बाह्य परिवेश को स्थान देता है। रचना यथार्थपरक हो या काल्पनिक, उसमें उपस्थित पात्र भावुक, संवेदनशील, आक्रामक या स्थितिप्रज्ञ जैसे विभिन्न मनोवैज्ञानिक स्वरूपों में दिखाई देते हैं। कुछ उपन्यासों में पात्रों की मानसिक गतिविधियाँ अपेक्षाकृत अधिक मिलती हैं, और यही विशेषता उन्हें अन्य उपन्यास-कोटियों से अलग कर मनोवैज्ञानिक उपन्यास की श्रेणी में रखती है। डॉ० रमाकान्ता के अनुसार "मनोवैज्ञानिक उपन्यास पात्र की मानसिकता तथा अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करता है

इसमें घटनाओं का सहारा पात्र की मनोग्रंथियों के रहस्य को खोलने के लिए किया जाता है।"1 डॉ. हरदयाल के अनुसार, हिन्दी में सामान्यतः वे उपन्यास मनोवैज्ञानिक माने गये हैं, जिनमें मनुष्य के बाह्य क्रियाकलाप को महत्त्व न देकर उसके मानसिक क्रिया-कलाप को महत्त्व दिया जाता है, और यह मानसिक क्रिया-कलाप असामान्य मनोविज्ञान अथवा मनोविश्लेषण शास्त्र के अनुकूल होते हैं।

अर्थात यदि खोजा जाए तो तिलस्मी-ऐयारी, जासूसी या डकैती प्रधान उपन्यासों में भी मनोवैज्ञानिक तत्वों की पहचान की जा सकती है। प्रेमचन्द को उनके उपन्यासों में 'सामाजिक प्रतिबद्धता' के लिए और जैनेन्द्र को 'मनोवैज्ञानिकता' के लिए जाना जाता है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि प्रेमचन्द ने पात्रों की मानसिक स्थिति का चित्रण नहीं किया या जैनेन्द्र केवल मनोविश्लेषण तक ही सीमित रहे। प्रेमचन्द का 'गबन' मध्यमवर्गीय समाज की मानसिकता को उभारता है, और 'गोदान' का नायक आरम्भ से अंत तक अपने अभावों की पूर्ति में लगा दिखाई देता है। सुरेश सिन्हा की पुस्तक हिंदी उपन्यास में प्रेमचंद के " 'निर्मला' उपन्यास को तो हिन्दी का प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यास"2 कहा गया है, जो प्रेमचन्द की मनोवैज्ञानिक दृष्टि को स्पष्ट करता है।

दरअसल प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को जिस सीमा तक विकसित कर दिया वहाँ हिन्दी के उपन्यासकारों के सामने दो ही विकल्प शेष थे या तो वे प्रेमचंद का अनुकरण करते और अपनी कोई निजी पहचान न बनाते या कथावस्तु और कथाशिल्प दोनों की दृष्टि से नई दिशाओं की खोज करते। प्रेमचंदोत्तर अनेक उपन्यासकारों ने दूसरा विकल्प चुना और हिन्दी उपन्यास को विविध दिशाओं में विकसित किया। इन नई दिशाओं में से एक प्रमुख दिशा मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की है।3 मार्क्स और फ्रायड के सिद्धांतों का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर अत्यधिक पड़ा। इसके प्रभावस्वरूप हो अथवा "यौन शुचिता के नैतिक आतंक से ग्रस्त भारतीय मध्यवर्गीय समाज में पश्चिमी शिक्षा दीक्षा, औद्योगीकरण और नगरीकरण के कारण रुढ़ियों का टूटना"4 हो, हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास की एक स्पष्ट धारा विकसित हुई। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द युग में मनोवैज्ञानिक उपन्यास की व्यापक कथा-रेखा केंद्र में थी, जबकि प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास की कथावस्तु अपेक्षाकृत गौण होती चली गई और उसके स्थान पर पात्रों के अंतर्मन, उनकी मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल तथा सूक्ष्म मानसिक प्रक्रियाओं को उद्घाटित करने वाले शब्द-चित्रों का प्रभुत्व बढ़ने लगा। प्रेम भटनागर इसी प्रवृत्ति को रेखांकित करते हैं। "प्रेमचन्दोत्तर युग में कथा का ह्रास हुआ और उपन्यासों ने मनोवैज्ञानिक वस्तुशिल्प को अपनाया। कथा जीवन सरिता से हटकर मनोगति के शिखर की ओर खिसक गई।"5 जैनेन्द्र के परख उपन्यास को इस प्रवृत्ति का प्रारंभिक बिन्दु माना जाता है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में पहली बार पाठकों को पात्रों के अंतरंग अनुभवों और मनोस्थिति के माध्यम से स्वयं को समझने का अवसर मिला। उनके शब्दों में "मैंने जगह-जगह कहानी के

तार की कड़ियाँ तोड़ दी हैं। वहाँ पाठक को थोड़ा कूदना पड़ता है और मैं समझता हूँ कि पाठक के लिए यह थोड़ा आयास वांछनीय होता है, अच्छा ही लगता है। .....सभी पात्रों को मैंने अपने हृदय की सहानुभूति दी है।.....दुनिया में कौन है जो बुरा होना चाहता है और कौन है जो बुरा नहीं है, अच्छा ही अच्छा है? न कोई देवता है न पशु। सब आदमी ही हैं, देवता से कम ही और पशु से ऊपर ही।"6 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'जयवर्धन', 'दशार्क', 'मुक्तिबोध', 'अनन्तर' - आदि उपन्यासों में उन्होंने मानवीय अन्तर्मन की सूक्ष्म हलचलों को रेखांकित किया है। जैनेन्द्र की कथा भूमि 'व्यक्ति-चरित्र' पर केंद्रित है, जहाँ पात्र प्रायः 'रॉन्ग नम्बर' जैसी प्रवृति के कारण मानसिक उलझनों में फँसते हैं। अधिकांश उपन्यासों का केन्द्र प्रेम-त्रिकोण बनता है। उनके स्त्री-पात्रों की विडम्बना यह है कि वे जिस पुरुष से प्रेम करती हैं उससे विवाह नहीं होता, और जिनसे विवाह होता है उनसे प्रेम नहीं बन पाता। इसी अवस्था से नैतिकता और आत्मसुख का संघर्ष उत्पन्न होता है तथा पति–प्रेमी, पत्नी–प्रेमिका के द्वन्द्व से कामकुण्ठा विकसित होती है। जैनेन्द्र के उपन्यासों में मुख्यतः यही मनोवैज्ञानिक तथ्य उभरते हैं।

हिन्दी के दूसरे महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार इलाचंद जोशी ने 'घृणामयी' (लज्जा), 'सन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'पर्दे की रानी', 'निर्वासित', 'मुक्ति पथ', 'सुबह के भूले', 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी', 'ऋतुचक्र', 'भूत का भविष्य' आदि उपन्यासों में अहम वाद, कुण्ठा और मनोविकृति जैसे मनोवैज्ञानिक पक्षों को चित्रित किया है। आलोचक उन्हें फ्रायड के 'मनोविश्लेषणवाद' तथा युंग की 'जातीय अवचेतना' की अवधारणाओं से प्रभावित मानते हैं। जोगी के उपन्यास साहित्य में मनोवैज्ञानिकता के आधिक्य पर टिप्पणी करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं, "इलाचन्द्र जोशी क्रमशः समाज की व्यापक स्थितियों के चित्रण से अलग होकर अधिकाधिक सीमित भूमि पर आते जा रहे है और आश्चर्य तो यह है कि यह सब यथार्थवाद और वैज्ञानिक सत्य के नाम पर किया जा रहा है। .....यह संभावना है कि साहित्यिक मूल्यों को छोड़कर वैज्ञानिक मूल्यों को प्रधानता देने लगेंगे, विज्ञान के नाम पर हीन और रुग्ण भावनाओं का चित्रण ही श्रेष्ठ साहित्य के नाम पर खपने लगेगा। क्या इस प्रक्रिया द्वारा श्रेष्ठ साहित्य के निर्माण की संभावना है?"7 मनोवैज्ञानिक उपन्यास की परंपरा में अज्ञेय का स्थान विशिष्ट है। डॉ. रांग्रा के अनुसार, "शेखर एक जीवनी से पहले का चरित्र चित्रण चित्रपट पर दिखायी गयी 'सिनेमा स्लाइडों' के समान आन्तरायिक था, हिन्दी-उपन्यासों में 'चलचित्रों' का सा विकासमान चरित्र और वह भी अन्तर्दृष्टित (सब्जेक्टिवली) दिखाने का श्रेय अज्ञेय को ही है।"8 'शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' आदि उपन्यासों में उन्होंने व्यक्तित्व-विकास, कुण्ठाओं और विकृत मानसिकताओं का अत्यन्त मार्मिक विश्लेषण किया है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने 'निमन्त्रण', 'विश्वास का बल' आदि उपन्यासों में वैवाहिक और विवाहेत्तर संबंधों, कुण्ठाओं और मनोवैज्ञानिक तनावों को प्रस्तुत किया है, जहाँ जैनेंद्र की भांति प्रेम-त्रिकोण की उपस्थिति भी मिलती है। डॉ. देवराज ने अपने उपन्यास 'पथ की खोज' (दो भागों में), 'बाहर-भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'मैं, वे और आप', 'अजय की डायरी' तथा 'दूसरा पत्र' में मनोग्रन्थियों और यौन समस्याओं का निष्पक्ष विश्लेषण किया है। 'दूसरी बार' उपन्यास के लेखक श्रीकान्त वर्मा ने स्त्री-पुरुष संबंधों को अत्यंत गहराई से चित्रित किया है। उनके यहाँ नायक अपनी पत्नी के सामने स्वयं को हीन मानता है, जिससे विद्रोह, आक्रामकता और स्थितियों के वशीभूत होने की प्रवृत्ति जन्म लेती है। 'प्यार' और 'घृणा' की विरोधी भावनाएँ उसके भीतर साथ-साथ विकसित होती हैं। इस प्रकार उनके उपन्यास आत्महीनता, आक्रामकता, काम-ग्रन्थि और विसंगति बोध को उभारते हैं। गिरिराज किशोर ने भी 'अंतर्ध्वंस', 'यात्राएँ' आदि अपने उपन्यासों में मानसिक तनावों और ग्रन्थियों का चित्रण किया है।

अन्य उपन्यासकारों में शरद देवड़ा का 'टूटती इकाइयाँ', 'आकाश आप बीती' आदि उपन्यासों में मानसिक द्वन्द्व का विश्लेषण उल्लेखनीय है। धर्मवीर भारती ने 'गुनाहों का देवता' में वासना की अनिवार्यता को रेखांकित किया है। जबकि नरेन्द्र कोहली ने 'आतंक' में महानगरीय जीवन के संदर्भ में मनुष्य के आंतरिक–बाह्य पक्षों को चित्रित किया है। प्रताप नारायण मिश्र ने अपने उपन्यासों में नगर के अभिजात्य वर्ग की मानसिकता का चित्रण किया है तो सियारामशरण गुप्त ने 'नारी', महेन्द्र भल्ला ने 'एक पति के नोट्स', गिरिधर गोपाल ने 'चाँदनी के खण्डहर', लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'खाली कुर्सी की आत्मा' तथा 'एक कटी हुई जिंदगी एक कटा हुआ कागज', मोहन राकेश ने 'अंधेरे बंद कमरे', अन्नपूर्णा देवी ने 'परत दर परत', डॉ. प्रभाकर माचवे ने 'साँचा', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'सोया हुआ जल', निर्मल वर्मा ने 'वे दिन', गोविन्द मिश्र ने 'वह अपना चेहरा', गंगा प्रसाद विमल ने 'मरीचिका', उषा प्रियम्बदा ने 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' तथा 'रुकोगी नहीं राधिका', नरेश मेहता ने 'डूबते मस्तूल', राजकमल चौधरी ने 'मछली मरी हुई, तथा 'देवगाथा', भारत भूषण अग्रवाल ने 'लौटती लहरों की बाँसुरी', योगेश गुप्त ने 'उनका फैसला' आदि उपन्यासों में मानव-जीवन के आन्तरिक क्रिया-कलापों, मनोग्रन्थियों, कुण्ठाओं, दमित काम आदि का विश्लेषण किया है।

इन सभी के अतिरिक्त भी हिंदी मनोविज्ञान से प्रभावित कई उपन्यास सामने आए। उपेन्द्रनाथ अश्क का 'शहर में घूमता आईना', राजेन्द्र यादव का 'कुल्टा', 'अनदेखे अनजाने पुल', चतुरसेन शास्त्री का 'पत्थर युग के दो बुत, प्रभाकर माचवे का 'द्वाभा', नरेश मेहता का 'दो एकांत', यादवचन्द्र जैन का 'पत्थर-पानी', अनंत गोपाल शेवड़े का 'निशागीत', 'मृगजल', लक्ष्मीनारायण लाल का 'काले फूल का पौदा', इन्द्र विद्यावाचस्पति का 'अपराधी कौन', रमेश बख्शी का 'बैसाखियों वाली इमारतें इत्यादि कुछ ऐसे ही उपन्यास हैं जो या तो वस्तुपक्ष के या फिर शिल्प के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों या पद्धतियों से प्रभावित रहे है। प्रेमचन्दोत्तर युग में लेखकों

के बदलते दृष्टिकोण के बारे में समालोचक श्री प्रेमभटनागर लिखते हैं, "नए उपन्यासकारों ने विस्तार की अपेक्षा गहराई, परिमाण (घटनाओं की संख्या) की अपेक्षा गुण और स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता को प्रश्रय दिया।"9

वहीं महिला उपन्यासकारों की रचनाओं ने भी हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास-कोश को समृद्ध किया है। प्रेमचन्द्र युग से ही एक अच्छी मात्रा में महिला उपन्यासकारों का आगमन हो चुका था। स्वाधीन भारत में इनकी सशक्त पीढ़ी तैयार हुई। अधिकतर महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में नारी-समस्या तथा नारी मनोविज्ञान केन्द्रीय विषय रहे है। कृष्णा सोबती का 'सूरजमुखी अँधेरे के', दीप्ति खंडेलवाल का 'वह तीसरा', मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी', राजी सेठ का 'तत्सम', मंजुल भगत का 'खातुल', मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब', चित्रा मुद्गल का 'एक जमीन अपनी', कान्ता भारती का 'रेत की मछली', कमल कुमार का 'आवर्तन', निरूपमा सोवती का 'पतझड़ की आवाजें', प्रभा खेतान का 'पीली आँधी', मैत्रेयी पुष्पा का 'त्रिया हठ' आदि उपन्यास कहीं–कहीं मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि लिए हुए हैं, जो जीवन के विविध रूपों से हमारा हृदय-स्पर्श कराती चलती हैं। इक्कीसवीं सदी में मनीषा कुलश्रेष्ठ ने मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'स्वप्नपाश' रचते हुए इस परंपरा को आगे बढ़ाया है।

निष्कर्ष :-

हिन्दी उपन्यास-साहित्य में भी चित्रित पात्र हमारे समाज के व्यक्तियों का ही रूपान्तरण होते हैं। साहित्य सामाजिक चरित्रों और परिवेश का कलात्मक प्रतिबिम्ब है, इसलिए कहीं हीन भावना वाले पात्र दिखाई देते हैं, तो कहीं उच्च मनोग्रन्थियों वाले। आज का जीवन ईर्ष्या, घृणा, प्रतिशोध और अभावों से भरा है, इसलिए स्नेह, विश्वास और प्रेम की अनुभूति 'क्षतिपूर्ति' जैसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से जुड़ जाती है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन का उद्देश्य मात्र 'इडिपस ग्रन्थि', 'लिबिडो' या अतृप्त वासनाओं को दिखाना नहीं है, बल्कि किसी पात्र का आक्रामक, असहाय या उदात्त रूप भी मनोविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। कहा गया है कि मनुष्य को 'व्यक्ति' बनने की प्रक्रिया में अनेक सोपानों से गुजरना पड़ता है। अर्थात अतृप्ति, आवेग, आत्म-विश्लेषण, प्रेम की आकुलता और व्यक्तित्व-निर्माण की तीव्र इच्छा ये सभी वे मनोवैज्ञानिक सोपान हैं, जिन पर विद्वानों का अपेक्षाकृत कम ध्यान गया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ० रमाकान्ता, हिन्दी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में असामान्य पात्र, पृ० 2
2. सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास, पृ. 188-89
3. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास के वर्ष, पृ. 52
4. वही, पृष्ठ 66
5. प्रेम भटनागर, 1968, हिंदी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 18

6. जैनेन्द्र कुमार, परख 'लेखक के कुछ शब्द', पृष्ठ 3
7. नन्ददुलारे वाजपेयी, 1955, नया साहित्य: नए प्रश्न, भार्गव भूषण प्रेस, बनारस, पृष्ठ 178-79
8. रणबीर रांग्रा, मनोवैज्ञानिक हिन्दी उपन्यास की वृहत्रयी, पृ. 16
9. प्रेम भटनागर, 1968, हिंदी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 16

*शोधार्थी (हिन्दी), तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर।
**शोधनिर्देशक (हिन्दी), प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, एम. के. एच. एस. गुजराती गर्ल्स कॉलेज इंदौर।